इकाई 23 सांविधानिक विकास, 1757-1857

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप:

- अंग्रेज़ी शासन की पहली शताब्दी के अंतर्गत महत्वपूर्ण सांविधानिक विकासों से परिचित हो सकेंगे,
- कंपनी शासन से ब्रिटिश सम्राट शासन की ओर संतरण को समझ पाएंगे,
- सरकारी ढांचे के विकास की मंजिलों से परिचय प्राप्त कर सकेंगे, और
- सांविधानिक परिवर्तनों और उनको प्रेरित करने वाले आर्थिक-राजनीतिक हितों के अंत:संबंध बता सकेंगे।

23.1 प्रस्तावना

अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनी मूलत: एक वाणिज्यिक निकाय था। वाणिज्यवाद के सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए और इजारेदारी मुनाफे सुनिश्चित बनाने के लिए कंपनी को राजनीतिक सत्ता और राजनीतिक सक्रियता की दिशा में बढ़ना पड़ा, जिसका परिणाम था राजस्व दे सकने वाले क्षेत्रों का अधिग्रहण। 1757 के बाद वह भारत की अधिसंख्यक आबादी पर राजनीतिक वर्चस्व स्थापित करने की विशेष स्थिति में आ गई।

कंपनी को नियंत्रित करने वाली सत्ता भारत से बहुत दूर ब्रिटेन में स्थित थी। इन स्थितियों और अंत:संबंधों के कारण ब्रिटिश सरकार को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। व्यापारी और अधिशासक की संयुक्त भूमिकाओं में कंपनी ने एक विशाल साम्राज्य का स्वरूप ग्रहण कर लिया। अब तक यह स्पष्ट हो चुका था कि भारतीय शासन की सत्ता एवं संप्रभुता कंपनी के स्वार्थ में निहित थी। ब्रिटिश सरकार इस निर्णय पर पहुंची कि वह राजसत्ता के दायरे के बाहर नहीं रह सकती थी। क्लाइव तथा हेस्टिंग्स के मतानुसार भी ब्रिटिश राजतंत्र के साथ सांविधानिक संबंध वांछनीय थे।

23.2 पृष्ठभूमि

कंपनी के स्थान पर राजतंत्र की संप्रभुता की स्थापना जैसा साहसिक कदम अभी नहीं उठाया जा सकता था। इससे सरकार के हाथों में प्रत्यक्षतः बहुत व्यापक संरक्षण दायित्व आ जाता। और फिर इससे भारतवासियों तथा यूरोपीय राष्ट्रों के बीच बहुत कटुता आ सकती थी। बुद्धिमानी की बात यही होती कि सांविधानिक कानून के प्रचलित सिद्धांतों के आधार पर कंपनी को नियंत्रण के अधीन रखा जाए।

अप्रैल, 1772 में भारत संबंधी मामलों की छानबीन के लिए एक मनोनीत समिति नियुक्त की गई। अगस्त में कंपनी ने सरकार से 1,00,000 के ऋण की मांग की। यह आश्चर्य की बात है कि कंपनी कर्मचारियों द्वारा धन जुटाए जाने के बावजूद कंपनी को गंभीर वित्तीय संकट का सामना करना पड़ा।

ब्रिटिश सरकार के सामने समस्या थी ईस्ट इंडिया कंपनी और उसकी संपत्ति के ब्रिटिश सरकार के साथ संबंधों की परिभाषा की। एक अन्य समस्या थी यह निर्धारित करने की कि ब्रिटेन स्थित कंपनी अधिकारी दूरस्थ भारत में कार्यरत बहुसंख्यक अधिकारियों और सैनिकों पर नियंत्रण कैसे रखें। बंगाल, मद्रास और बंबई में व्यापक ब्रिटिश अधिकार क्षेत्रों को एकल नियंत्रण केंद्र के अधीन रखने का प्रश्न भी चिंता का विषय बना हुआ था।

ईस्ट इंडिया कंपनी और इसकी संपत्तियों और ब्रिटिश सरकार के बीच संबंधों का स्वरूप भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण था, क्योंकि इसका घनिष्ठ संबंध था ब्रिटेन में दलगत एवं संसदीय प्रतिद्वंद्विता से। अंग्रेज़ राजनेता राजनीतिक रूप से महत्वाकांक्षी थे और अंग्रेज़ व्यापारी वाणिज्यिक लाभ के उतावले। बंगाल से कंपनी को प्रचुर संसाधन प्राप्त हुए थे। अधिकारियों द्वारा घर लाई गई प्रभूत संपदा ने ब्रिटेन में ईर्ष्या भाव को बनाया। व्यापारी, उत्पादकों के बढ़ते हुए तबके और नए उभरे "स्वतंत्र उद्यमी" भारतीय व्यापार से होने वाले लाभ और भारत से आने वाली संपदा में अपने हिस्से के लिए उतावले थे। यह सारा लाभ ईस्ट इंडिया कंपनी को ही क्यों मिले? कंपनी की व्यापारिक इजारेदारी को खत्म करने के लिए वे आतुर हुए। इसी उद्देश्य से उन्होंने कंपनी की बंगाल प्रशासन रीतियों की आलोचना की।

ब्रिटेन के अनेक राजनीतिक चिंतक और राजनेता आशंकित थे कि कंपनी तथा इसके प्रभुत्वशाली संपन्न अधिकारी अंग्रेज़ी राष्ट्र का नैतिक स्तर गिरा देंगे और ब्रिटिश राजनीति में भ्रष्टाचार को बढ़ावा देंगे। कंपनी ने अपने प्रतिनिधियों के लिए हाउस ऑफ कॉमंस में पद खरीद लिए। इस बात का डर सामने आया कि भारत से लाए गए धन से कंपनी ब्रिटिश सरकारी तंत्र में खतरनाक सीमा तक वर्चस्व प्राप्त कर लेगी।

स्वतंत्र व्यापार के पक्षधर अर्थशास्त्रियों के एक नए समुदाय ने विशिष्टता प्राप्त कंपनियों की भर्त्सना की। अपनी पुस्तक "राष्ट्रों की संपदा" में लिखा था कि विशिष्टता प्राप्त कंपनियां जो देश उनकी स्थापना करते हैं और जो जिनपर वे शासन करती हैं, दोनों ही को क्षति पहुंचाते हैं।

अपने देश में ईस्ट इंडिया कंपनी को अद्वितीय स्थान प्राप्त था। उसे किंग जार्ज III का संरक्षण प्राप्त था। संसद के अंतर्गत अपने शुभचिंतकों की सहायता से उसने संघर्ष चलाया। संसद ने किसी समझौते पर आने का निर्णय किया। एक संतुलन की स्थिति बनाई गई। ब्रिटेन के समूचे प्रभावशाली अभिजात वर्ग के हित में अंग्रेज़ों ने कम्पनी के भारतीय प्रशासन को नियंत्रण में लेने का निर्णय किया। कंपनी को पूर्व के क्षेत्रों में व्यापार की अपनी इज़ारेदारी बनाए रखने की अनुमति मिल गई। कंपनी निदेशकों को भारतीय प्रशासन का नियंत्रण सौंप दिया गया।

23.3 नियामक अधिनियम, 1773

इन परिस्थितियों में कंपनी ने कंपनी प्रशासन के नियंत्रण के लिए नियामक अधिनियम, 1773 में पारित किया। इस अधिनियम ने अपने देश में कंपनी के संविधान में परिवर्तन

किए, भारत के सभी भूभाग एक सीमा तक नियंत्रण के अधीन ला दिए गए।

सरकार द्वारा कंपनी कार्यों की देख-रेख के लिए दक्षतापूर्वक प्रावधान बनाए गए। कंपनी निदेशकों के न्यायालय के संविधान में भी परिवर्तन किए गए। यह आवश्यक बना दिया गया कि वह बंगाल से प्राप्त नागरिक एवं सैनिक मामलों के बारे में सभी सूचनाएं और भारत से प्राप्त राजस्व सरकार को भेजेगी।

कार्यपालिका प्रशासन के क्षेत्र में, बंगाल के गवर्नर का पद बढ़ाकर गवर्नर जनरल कर दिया गया। इसकी कौंसिल में चार सदस्य रखे जाते थे। कौंसिल ने गवर्नर जनरल को युद्ध और शांति के मसलों में मद्रास तथा बंबई की प्रेसिडेंसियों के नियंत्रण एवं देख-रेख का अधिकार दिया। प्रेसिडेंसी के नागरिक एवं सैनिक प्रशासन का कार्य इसी निकाय के अधीन था, बंगाल, बिहार और उड़ीसा राज्यों के क्षेत्रीय अधिग्रहण एवं राजस्व के परिचालन के साथ-साथ।

मद्रास और बंबई के गवर्नरों को सरकारी कामकाज, राजस्व अथवा कंपनी हितों से जुड़ी सूचनाएं नियमित रूप से गवर्नर जनरल को भेजनी होती थीं। गवर्नर जनरल स्वयं निदेशक मंडल के अधीन होता था और कंपनी हितों से सरोकार रखने वाले सभी मामलों की पूरी सूचना उसे देता था।

अधिनियम के अंतर्गत यूरोपवासियों, कर्मचारियों तथा कलकत्ता के नागरिकों को न्याय सुलभ कराने के लिए कलकत्ता में एक उच्च न्यायालय की स्थापना का भी प्रावधान था।

गवर्नर जनरल तथा कौंसिल को फोर्ट विलियम एवं अधीनस्थ कारखानों के सामान्य परिचालन के लिए नियम, अध्यादेश और निर्देश बनाने की विधायक सत्ता भी दी गई।

निर्देशक अधिनियम व्यवहारतः सुचारु रूप से नहीं चल पाया। व्यावहारिक रूप देने के प्रयासों के साथ ही इसकी त्रुटियां सामने आ गईं। ब्रिटिश शासन द्वारा देख-रेख का कार्य अप्रभावी बना रहा। गवर्नर जनरल को अपने विरुद्ध एकजुट हो जाने वाली कौंसिल के विरोध का सामना करना पड़ा। उनका उल्लंघन करने का अधिकार उसे नहीं था, यद्यपि समान विभाजन की स्थिति में उसे निर्णायक मत प्राप्त था। कौंसिल की फूट ने गंभीर किस्म की बाहृय एवं आंतरिक समस्याओं के समाधान से उसे रोक दिया। उन्हें अक्सर गतिरोध का सामना करना पड़ता। जिससे प्रशासन कार्य के सुचारु रूप से संचालन में बाधा आई। मद्रास और बंबई के अध्यक्ष गवर्नर जनरल के सामान्य नियंत्रण के अधीन थे और वास्तविक व्यवहार में कंपनी निष्प्रभावी सिद्ध हुई।

23.4 पिट का भारत अधिनियम, 1784

पिट का भारत अधिनियम अगस्त 1784 में पारित हुआ। निदेशक अधिनियम की त्रुटियों को दूर करना इसका उद्देश्य था। कंपनी के सार्वजनिक मामलों तथा भारत के प्रशासन कार्य को ब्रिटिश सरकार के सर्वोच्च नियंत्रण के अधीन लाया जाना था। इस अधिनियम ने छः कमिश्नरों वाला एक बोर्ड ऑफ कंट्रोल बनाया, जिसमें दो कैबिनेट मिनिस्टर भी आते थे। बोर्ड ऑफ कंट्रोल को निदेशक मंडल तथा भारत सरकार के कार्यों का संचालन एवं नियंत्रण करना होता था। भारत के ब्रिटिश अधिकार के अंतर्गत क्षेत्रों के नागरिक एवं सैन्य प्रशासन सभी मामलों पर उन्हें नियंत्रण रखना होता था। तीन निदेशकों वाली एक मनोनीत समिति की नियुक्ति राजनीतिक एवं सैनिक मामलों में निदेशक मंडल के स्थान पर काम करने के लिए की गई।

भारत में कंपनी प्रशासन के संविधान में संशोधन किया गया। अधिनियम ने इस सिद्धांत को प्रतिष्ठा दी कि भारत सरकार को गवर्नर जनरल तथा एक त्रि-सदस्यीय कौंसिल के अधीन लाया जाए, ताकि कौंसिल के एक सदस्य का भी समर्थन प्राप्त होने पर वह अपनी इच्छानुसार कार्य कर सके। गवर्नर जनरल को निर्णायक मत दिया गया था। अधिनियम में स्पष्ट उल्लेख था कि युद्ध, कूटनीतिक संबंधों तथा राजस्व संबंधी सभी मामलों में मद्रास तथा बंबई की प्रेसिडेंसियां बंगाल प्रेसिडेंसी के अधीन होंगी।

गवर्नर जनरल तथा कौंसिल को ब्रिटिश शासन के अधीन बनाया गया था। निदेशकों अथवा मनोनीत समिति के अनुमोदन के बिना वे किसी युद्ध की घोषणा अथवा संधि का प्रस्ताव नहीं कर सकते थे।

पिट का भारत अधिनियम कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। प्रेसिडेंसी और बोर्ड द्वारा भविष्य में भारत का राज्य सचिव और उसकी कौंसिल का रूप लेना निश्चित था। यह तथ्य प्रेसिडेंसियों के गवर्नरों के सापेक्ष गवर्नर जनरल को सर्वोच्च अधिकार देते हुए भारत के एकीकरण में सहायक सिद्ध हुआ। गवर्नर जनरल की एक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल/कार्यकारिणी परिषद में एक सदस्य कम करके उसकी स्थिति सुदृढ़ बना दी गई। गवर्नर जनरल और गवर्नरों को अपनी कौंसिलों के प्रतिकूल जाने का अधिकार दिया गया। कंपनी की भारत स्थित संपत्ति को ब्रिटिश संसद के वर्चस्व के अधीन ला दिया गया।

इस अधिनियम ने एक संकेंद्रित प्रशासन की आधारशिला रखी—यह प्रक्रिया उन्नीसवीं सदी के अंत में उत्कर्ष पर पहुंच गई। ईस्ट इंडिया कंपनी पर संसद का नियंत्रण और कड़ा हो गया। यह प्रवृत्ति 1858 में ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा भारत का प्रशासन संभालने तक अस्पष्ट बनी रही।

अधिनियम में अनेक त्रुटियां थीं। इसमें अधिकार और कर्तव्य का विभाजन कर दिया गया था। गवर्नर जनरल को निदेशकों तथा बोर्ड ऑफ कंट्रोल, दोनों के स्वामित्व के अधीन काम करना था। प्राधिकार संबंधी इस संघर्ष से कार्यस्थल पर उपस्थित व्यक्ति की प्रमुखता का विचार सामने आया। इसके अनुरूप कार्नवालिस ने अपने प्राधिकार का विस्तार अधिकाधिक सीमा तक किया। ब्रिटिश सरकार को वास्तविक क्रियाकलापों का पता न था। इससे गवर्नर जनरल को महत्वपूर्ण मसलों पर अपनी इच्छानुसार कार्य करने का अवसर मिला।

पिट के भारत अधिनियम में दिए गए ढांचे के अनुसार ही 1857 तक भारत का प्रशासन कार्य चलाया गया। गवर्नर जनरल नियुक्त होने के साथ ही कार्नवालिस ने भारत में सुरक्षा, शांति और ब्रिटिश साम्राज्य के हितों से जुड़े महत्वपूर्ण मामलों में कौंसिल का उल्लंघन करने का अधिकार पाने पर बल दिया। 1786 के अधिनियम से उसे वांछित अधिकार मिल गया। गवर्नर जनरल तथा कमांडर-इन-चीफ के पदों को संयुक्त कर दिया गया।

1788 के विज्ञप्ति अधिनियम ने बोर्ड ऑफ कंट्रोल को पूर्ण अधिकार एवं वर्चस्व दे दिया। वह कंपनी से ब्रिटिश साम्राज्य की ओर सत्तांतरण की दिशा में कदम था।

बोध प्रश्न 1

1) ब्रिटिश सरकार ने यह फैसला क्यों किया कि ईस्ट इंडिया कंपनी के मामले उसके नियंत्रण के बाहर नहीं बने रह सकते थे?

....

....

....

2) पिट के भारत अधिनियम ने नियामक अधिनियम की किन त्रुटियों को दूर किया? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

23.5 1793 का चार्टर अधिनियम

1793 में चार्टर का नवीकरण किया गया। बोर्ड ऑफ कंट्रोल का प्रेसिडेंट हेनरी डंडस चार्टर को नया रूप देने तथा कंपनी को अपने राजनीतिक विशेषाधिकार एवं दायित्व बनाए रखने की अनुमति देने के पक्ष में था। कार्नवालिस ने भी इस मत का समर्थन किया। कंपनी चार्टर का बीस वर्षों के लिए नवीकरण किया गया और यह घोषित किया गया कि कंपनी को अगले बीस वर्षों तक अपनी संपत्ति बनाए रखने की अनुमति प्राप्त है।

कौंसिल का उल्लंघन करने संबंधी गवर्नर जनरल तथा गवर्नरों के अधिकार पर बल दिया गया और उनको स्पष्ट किया गया। यह अधिकार विशेष रूप से कार्नवालिस को 1786 में दिया गया। प्रेसिडेंसियों पर गवर्नर जनरल का नियंत्रण और मज़बूत कर दिया गया। उसे कौंसिल के पूर्व-परामर्श के बिना ही बंगाल में अपनी अनुपस्थिति की अवधि में आदेश-निर्देश जारी करने की अनुमति प्राप्त थी। केंद्रीय सरकार को प्राप्त सभी कार्यकारी अधिकारों का प्रयोग वह कर सकता था।

बंगाल के ब्रिटिश क्षेत्रों के आंतरिक प्रशासन के लिए लागू किए जाने वाले सभी नियमों का एक ढांचा तैयार किया गया। नियामक अधिनियम भारतवासियों के अधिकारों, व्यक्तित्व एवं संपत्ति पर लागू होता था। इसमें उल्लिखित नियमों से अपने निर्णयों के नियमन के लिए न्यायालय प्रतिबद्ध हुए। इसमें यह अपेक्षा भी की गई थी कि "व्यक्ति एवं संपत्ति संबंधी अधिकारों से जुड़े सभी कानून भारतीय भाषाओं में अनुवाद के रूप में प्रकाशित होंगे और उनके पूर्ण क्रियान्वयन के आधारों संबंधित वक्तव्य दिया जाएगा ताकि जनसमुदाय अपने अधिकारों, विशेषाधिकारों एवं प्रतिरक्षा से परिचित हो सकें।"

इस प्रकार 1793 अधिनियम ने विगत शासकों के व्यक्तिगत नियमों के स्थान पर ब्रिटिश भारत में लिखित विधि-विधानों द्वारा प्रशासन की आधारशिला रखी। नियमों तथा लिखित विधियों की व्याख्या न्यायालय द्वारा की जानी थी। सेक्युलर मानवीय संस्थाओं के माध्यम से क्रियान्वित और सार्वभौम रूप से लागू किए जाने वाले नागरिक कानून की अवधारणा ने एक महत्वपूर्ण परिवर्तन की सूचना दी। भारतीयों को ऐसे पद नहीं दिये जाने थे जिसमें वे प्रभुत्व या अधिकार का प्रयोग करते थे। ऐसा इसलिये किया जाता था ताकि अंग्रेज़ों को अधिक से अधिक लाभदायक पद मिल सकें।

23.6 1813 का चार्टर अधिनियम

1813 में संभाव्य एक और नवीकरण के पहले कंपनी के मामलों की जांच-पड़ताल का आदेश दिया गया। 1808 में हाउस ऑफ कॉमंस ने एक अन्वेषण समिति नियुक्त की। न्यायिक एवं पुलिस व्यवस्था संबंधी इसकी रिपोर्ट 1812 में प्रस्तुत की गई थी। सरकार ने ब्रिटिश नागरिकों को अपने जहाज़ों के साथ भारत आगमन की अनुमति देने का फैसला किया।

ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार को विजयाभियान नीति का अनुसरण न करने का विशेष निर्देश दिया था। लेकिन भारत के अंतर्गत आक्रामक नीतियों का प्रतिफल क्षेत्रीय अधिग्रहण में हुआ। लार्ड वेलेज़ली तथा मारर्की ऑफ हेस्टिंग्स ने एक साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण किया। कंपनी की सत्ता का प्रसार पंजाब, नेपाल और सिंध के अतिरिक्त समूचे भारत में हो गया था। युद्धों में हुए अतिशय व्यय तथा व्यापारिक क्षति के कारण कंपनी ने सरकार से वित्तीय सहायता की मांग की। ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा वाणिज्यिक इजारेदारी बनाए रखने के विरुद्ध व्यापक विक्षोभ भी था। स्वतंत्र सौदागरों ने भी उसके समापन की मांग की। वे भारत के साथ होने वाले व्यापारिक लाभ में अपना हिस्सा चाहते थे। उस समय तक ऐडम स्मिथ तथा उसके अनुगामियों के सिद्धांत ब्रिटेन की राजनीति में प्रभाव ले चुके थे। बैंथमवादी-सुधार, एवांगेलिक तथा परंपरावादी ब्रिटिश राजनीति एवं ब्रिटिश अधीन भारत की ओर नीतियों को प्रभावित करने का प्रयास कर रहे थे। उनका सर्वोपरि लक्ष्य था साम्राज्य की सुस्थिरता को बनाए रखना।

1813 के अधिनियम ने कंपनी चार्टर का बीस वर्षों के लिए नवीकरण कर दिया, लेकिन इसने कंपनी के अधीन भारतीय क्षेत्रों पर ब्रिटिश सम्राट की संप्रभुता पर भी बल दिया। कंपनी को अगले बीस वर्षों तक अपने क्षेत्रीय अधिकार में रखने की अनुमति मिल गई।

कंपनी भारत के साथ व्यापार की अपने इजारेदारी से वंचित कर दी गई। चीन के साथ व्यापार की अपनी इजारेदारी बीस वर्षों तक बनाए रखने की उसे अनुमति मिल गई। भारतीय व्यापार का रास्ता सभी ब्रिटिश सौदागरों के लिए खोल दिया गया।

23.7 1833 का चार्टर अधिनियम

औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप ब्रिटेन सूती कपड़ों तथा अन्य कारखाना सामग्रियों के उत्पादक के रूप में उभरा था। भारत जैसा विशाल देश अनेकानेक तैयार मालों के उपभोग एवं कच्चा माल जुटाने में समर्थ था। ईस्ट इंडिया कंपनी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लक्ष्यों के अधीन थी। उसकी प्रतिबंध नीतियां स्वदेशी उद्योगों के विनाश की ओर प्रवृत्त हुईं। ब्रिटेन की नई औद्योगिक नीति का आधारभूत दर्शन ''मुक्त व्यापार'' बन चुका था। प्रतिबंधों तथा एकाधिकार से व्यापार को मुक्त करने की व्यापक जनाकांक्षा सामने आई।

1833 में चार्टर के नवीकरण के समय कंपनी के उन्मूलन के लिए और सम्राट द्वारा प्रशासन संभालने के लिए व्यापक आंदोलन हुए। एक संसदीय जांच-पड़ताल भी चलाई गई।

ब्रिटेन का राजनीतिक वातावरण सुधारों के लिए उत्साह से ओत-प्रोत था। सुपरिचित सुधार अधिनियम, 1832 में पारित किया गया। औद्योगिक क्रांति से प्राप्त वैभव का उपभोग समूचा देश कर रहा था। वह मुक्त व्यापार की नीति से जुड़ा रहने में समर्थ था। समूचे ब्रिटिश साम्राज्य में दास प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया।

भारत के सांविधानिक इतिहास में 1833 का अधिनियम एक बड़ा प्रतीक चिह्न बन गया।

चीन के साथ चाय व्यापार की इजारेदारी खत्म कर दी गई। कंपनी की अब केवल राजनीतिक भूमिका रह गई थी। भारत को कंपनी के ऋण चुकाने थे। इसके साझेदारों के लिए 10.5 प्रतिशत प्रति वर्ष अंशदेय सुनिश्चित कर दिया गया। व्यापारियों तथा संप्रभुओं की एकता अंततः समाप्त कर दी गई। कंपनी को भारत स्थित संपत्ति को ब्रिटिश सम्राट के न्यास (ट्रस्ट) में रखा जाता था। बोर्ड ऑफ कंट्रोल के प्रेसिडेंट को भारतीय मामलों के सचिव का पद मिला। निदेशकों को बोर्ड ऑफ कंट्रोल के विशेषज्ञ सलाहकारों के रूप में काम करना था। बोर्ड ऑफ कंट्रोल को भारतीय क्षेत्र के प्रशासन एवं राजस्व से संबंधित कंपनी के मामलों की देखरेख, निर्देशन एवं नियंत्रण का अधिकार प्राप्त था।

बंगाल के गवर्नर जनरल को समूचे भारत का गवर्नर जनरल बनाया गया। कौंसिल के अंतर्गत गवर्नर जनरल को कंपनी के नागरिक एवं सैनिक मामलों का नियंत्रण, देखरेख एवं निर्देशन करना था। बंबई, बंगाल, मद्रास और अन्य क्षेत्रों को कौंसिल गवर्नर जनरल के पूर्ण नियंत्रण के अधीन ला दिया गया। राजस्व की वसूली तथा व्यय पर केंद्रीय सरकार पूर्ण नियंत्रण रखता था। प्रांतीय सरकारों के व्यय, नये पदों का गठन और बंबई, मद्रास सरकार के सभी सदस्यों का अनुशासन केंद्रीय सरकार के पूर्ण नियंत्रण के अधीन थे।

1833 के अधिनियम के माध्यम से कौंसिल गवर्नर जनरल को भारत के सभी ब्रिटेन अधिकृत क्षेत्रों के लिए विधान बनाने का अधिकार दे दिया गया। ये कानून अंग्रेज अथवा भारतीय विदेशी अथवा अन्य, सभी व्यक्तियों तथा कंपनी कर्मचारियों पर लागू होते थे। भारत के सभी न्यायालयों में उन पर अमल किया जाना था।

अधिनियम से गवर्नर जनरल की कार्यकारी कौंसिल में कानून बनाने वाले सदस्यों की संख्या एक और बढ़ा दी गई, जिसका कार्य पूर्णतः वैधानिक था। उसे कौंसिल में कोई मताधिकार नहीं दिया गया था और बुलाए जाने पर ही उसे मीटिंगों में उपस्थित होना पड़ता था। लेकिन व्यवहारतः वह कौंसिल का नियमित सदस्य ही बन गया। विधि-विधान की भूमिका रखने वाले इस सदस्य, लार्ड मैकाले ने अनेक वर्षों तक सरकार की शिक्षा नीति को प्रभावित किया।

प्रेसिडेंसी कौंसिलों में सदस्यों की संख्या बढ़कर दो हो गई। बंबई और मद्रास को कमांडर-इन-चीफ के अधीन अलग सेवाएं रखनी थीं। उन्हें केंद्र सरकार के नियंत्रण के अधीन रहना था।

अधिनियम में भारत की एक विधि-संहिता की रचना का प्रावधान था। 1833 के पहले अनेक प्रकार के कानून होते थे। जैसे अंग्रेज़ी कानून, प्रेसिडेंसी (रेगुलेशंस) अधिनियम, हिन्दू कानून, मुस्लिम कानून, रीति-रिवाज़ों संबंधी कानून इत्यादि। इस अधिनियम के माध्यम से गवर्नर जनरल को भारत में प्रचलित विविध नियमों, निर्देशों के अध्ययन, संचयन एवं संहिता निर्माण के लिए विधि आयोग की नियुक्ति का अधिकार दिया गया। भारतीय विधि आयोग के प्रयासों से भारतीय दंड संहिता, नागरिक एवं अपराध विधियों संबंधी संहिताओं को लागू किया गया।

अधिनियम के उपभाग 87 में घोषणा की गई थी कि कोई भी स्वदेशी अथवा भारत में निवास कर रहा ब्रिटिश साम्राज्य का अधीनस्थ व्यक्ति अपने ही धर्म, जन्म-स्थान, वंशमूल अथवा रंग से संबंधित नहीं माना जाएगा अथवा उनमें से किसी को भी कंपनी की सेवा के लिए अयोग्य नहीं माना जाएगा। यह एक बहुत बड़ी घोषणा थी। परवर्ती काल में लार्ड मोर्ले ने इसे ब्रिटिश संसद द्वारा 1909 तक पारित किए भारत संबंधी अधिनियमों से सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना था। लेकिन इसका कोई विशेष व्यावहारिक महत्व नहीं था, क्योंकि कुछ भी उसके अनुसार नहीं किया जा सका और भारतवासियों को नागरिक एवं सैन्य सेवाओं में उच्च पदों से अलग ही रखा गया था।

1833 के चार्टर अधिनियम में कंपनी की प्रतिष्ठित सेवाओं के लिए भारतवासियों को मनोनीत करने के लिए कोई प्रावधान नहीं बनाया गया था। फिर भी, किसी प्रकार की विभेद न रखने की घोषणा संबंधी अनुच्छेद अत्यंत महत्वपूर्ण था क्योंकि सदी के अंतिम वर्षों में यह भारत में राजनीतिक आंदोलन का आधार-बिंदु बन गया।

बोध प्रश्न 2

1) 1833 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने लाभ का कौन-सा महत्वपूर्ण स्रोत खो दिया। पांच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

2) 1793 के चार्टर अधिनियम के मुख्य अनुच्छेद क्या थे? दस पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

23.8 1853 का चार्टर अधिनियम

राजनीतिक रूप से सचेत भारतीयों ने ईस्ट इंडिया कंपनी की प्रतिक्रियावादी सरकार खत्म करने का प्रयास किया। राजा राममोहन राय ने ब्रिटेन जाकर संसदीय विशिष्ट समिति के समक्ष भारत का प्रतिनिधित्व किया। बंबई एसोसिएशन तथा मद्रास नेटिव एसोसिएशन ने भी इसी प्रकार की याचिकाएं भेजीं। लेकिन इसका विभिन्न दलों, मंत्रियों, बोर्ड ऑफ कंट्रोल के प्रेसिडेंट और कंपनी निदेशकों ने कड़ा विरोध किया। वे चार्टर-नवीकरण के पक्ष में थे। 1853 के अधिनियम द्वारा विधान संबंधी उद्देश्यों से अतिरिक्त कौंसिल सदस्यों का प्रावधान करके वैधानिक कार्यों को कुछ और आगे बढ़ाया गया।

विधि सदस्य को गवर्नर जनरल की कार्यकारी कौंसिल का पूर्ण सदस्य बनाया गया। सभी वैधानिक प्रस्तावों के लिए गवर्नर जनरल की सहमति आवश्यक बना दी गई। इस ढांचे के अंतर्गत केंद्रीय विधानसभा की रचना पूरी हुई। केंद्रीय विधान परिषद के अंतर्गत प्रत्येक प्रांत से एक सदस्य होता था। प्रांत विशेष से संबंधित कार्यों पर उस प्रांत के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में विचार किया जाता था। कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को कौंसिल का अतिरिक्त सदस्य बनाया गया। दो अन्य सामान्य नागरिक सदस्यों का मनोनयन गवर्नर जनरल कर सकता था, लेकिन इस प्राधिकार का प्रयोग कभी हुआ नहीं।

वैधानिक सामर्थ्य वाली इस कौंसिल के अंतर्गत 12 सदस्य होते थे। इनमें से गवर्नर जनरल, कमांडर-इन-चीफ उसकी कौंसिल के चार सदस्य, तथा छः विधायक सदस्य।

भारत की सभी सेवाओं में नियुक्तियां, प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा की जानी थीं। लार्ड मैकाले को संबंधित समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

निदेशक संख्या 24 से घटाकर 18 कर दी गई। इनमें छह का मनोनयन ब्रिटिश सम्राट द्वारा किया जाना था।

कंपनी भारतीय क्षेत्रों की अपनी संपत्ति बनाए रख सकती थी, "सम्राज्ञी, उसके उत्तराधिकारियों और परवर्ती शासकों के हितों के अनुरूप, जब तक कि संसद कोई अन्य प्रावधान सामने न रखे।"

"विधायक पार्षदों" और "कार्यकारी पार्षदों" के बीच स्पष्ट विभेद किया गया था और इस प्रकार पहली बार विधान-रचना को सरकारी तंत्र का विशेष कार्य माना गया, जिसके लिए विशेष तंत्र एवं प्रणाली की आवश्यकता थी। कौंसिल के कार्य-व्यापार सार्वजनिक रूप से चलाए जाते थे। अपने कार्य-निष्पादन के लिए इसने जो प्रणाली अपनाई, वह बहुत कुछ ब्रिटिश संसद की तरह ही थी। सवाल सामने रखे जाते थे, संबंधित प्रपत्रों एवं सूचनाओं की मांग की जाती थी और सरकार की आलोचना उसकी त्रुटियों तथा ज्यादतियों के लिए की जाती थी।

गृह विभाग के अधिकारियों के मन में कुछ आशंकाएं उभरीं, कि प्रतिनिधिक व्यवस्था कहीं उनके निरंकुश तंत्र में पैठ न कर ले। ब्रिटेन स्थित अधिकारी विचलित हो गए जब केवल अंग्रेज़ कार्मिकों से बनी परिषद/कौंसिल ने साहसिकता और सूझबूझ का परिचय देते हुए "कार्यकारिणी" के क्षेत्र में दखल दिया। शिकायतों को सुलझाने संबंधी इसकी याचिकाओं को गृह देश की सरकार के प्राधिकार का उल्लंघन बताया गया और किन्हीं विधेयकों की सार्वजनिक अस्वीकृति से ब्रिटेन स्थित अधिकारियों को ठेस पहुंची। विधान परिषदों से किसी भी भारतीय को संबंधित नहीं किया गया।

व्यवहारत: विधान परिषद ने भारत सरकार के समूचे ढांचे में परिवर्तन का खतरा सामने रखा। वह "एंग्लो-इंडियन हाउस ऑफ कॉमंस" का रूप ले चुकी थी।

23.9 भारत सरकार अधिनियम, 1858

1853 चार्टर अधिनियम से ईस्ट इंडिया कंपनी को अगले बीस वर्षों तक भारत का प्रशासनिक अधिकार न दिए जाने पर ब्रिटिश सरकार को दखल देने और भारत में ईस्ट

इंडिया कंपनी का स्थान लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ। 1857 की घटनाओं, तथाकथित "विद्रोह" से यह प्रक्रिया और भी तेज हुई।

बिना किसी देरी के ब्रिटिश साम्राज्य का पूर्ण विस्तार भा[illegible]क करने के लिए व्हिग और टोरी एकजुट हो गए। ब्रिटिश प्रधानमंत्री लार्ड पामर्सटन ने ब्रिटिश सम्राट द्वारा भारत का प्रशासन कार्य सीधे संभालने के सरकार के निर्णय की घोषणा की। जान स्टुअर्ट मिल ने एक गौरवशाली एवं सशक्त याचिका तैयार की, जिसे कंपनी द्वारा संसद के दोनों सदनों में सरकार के विरुद्ध पेश किया गया। लेकिन कोई भी याचिका अब कंपनी प्रशासन के विरुद्ध बढ़ती आलोचना की लहर को रोक नहीं सकती थी। बोर्ड ऑफ कंट्रोल के अध्यक्ष लार्ड स्टैनले ने भारत के "बेहतर प्रशासन" के लिए एक विधेयक प्रस्तुत किया, जिसे 1858 में संसदीय अधिनियम का स्वरूप मिल गया।

भारत का प्रशासनिक कार्य अंग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से सम्राट के हाथों में आ गया। कंपनी की सशस्त्र सेनाएं सम्राट के अधीन आ गईं।

बोर्ड ऑफ कंट्रोल और निदेशक मंडल का उन्मूलन कर दिया गया। उनका स्थान भारत के राज्य सचिव और उसकी इंडिया कौंसिल ने लिया। उन्हें सम्राज्ञी के नाम से भारत का शासन कार्य चलाना था। राज्य सचिव को संसद में बैठना होता था। वह इंग्लैंड का एक कैबिनेट स्तर का सचिव था और संसद के प्रति उत्तरदायी था। भारत पर परम नियंत्रण का अधिकार संसद के पास ही बना रहा। अधिनियम द्वारा एक पंद्रह सदस्यीय इंडिया कौंसिल का गठन किया गया। उसे राज्य सचिव को परामर्श देना होता था, जो इसके फैसलों का उल्लंघन भी कर सकता था। इंडिया कौंसिल के अधिकांश सदस्य भारतीय सेवाओं से निवृत्त व्यक्ति थे।

राज्य सचिव को गवर्नर जनरल के साथ गुप्त संदेशों और प्रेषित सामग्रियों के आदान-प्रदान का अधिकार प्राप्त था। उनकी सूचना इंडिया कौंसिल को देना उसके लिए आवश्यक नहीं था। राज्य सचिव को नियमित अवधि पर भारत की नैतिक एवं भौतिक प्रगति के बारे में रिपोर्ट हाउस ऑफ कॉमंस को देनी होती थी।

इंग्लैंड के साथ अपने संबंधों में भारत सरकार कौंसिल में राज्य सचिव द्वारा सुनिश्चित निर्देशों का अनुसरण करती थी। विधि-विधान, भू-राजस्व, सार्वजनिक कार्य, रेलवे, नौकरियों, नए खर्चों और नीतियों से सभी मसलों का राज्य सचिव द्वारा कड़ा परीक्षण एवं नियंत्रण किया जाता था। राज्य सचिव द्वारा भारत में बनाए गए नियमों-निर्देशों को हाउस ऑफ कॉमंस के सामने रखा जाता था।

गवर्नर जनरल इस समय से वायसराय अथवा सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में जाना जाने लगा। नीति-निर्धारण एवं क्रियान्वयन के मामले में वायसराय की स्थिति अधिकाधिक क्षीण होकर ब्रिटिश शासन के अधीनस्थ हो गई। अंततः भारत का समूचा प्रशासनिक कार्य सीधा लंदन से नियंत्रित होने लगा।

बोध प्रश्न 3

1) 1857 का विद्रोह भारत के प्रशासनिक कार्य के ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा अधिग्रहण के लिए किस सीमा तक जिम्मेदार था?

......

......

......

2) 1858 के भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत राज्य सचिव तथा वायसराय को कौन से अधिकार प्राप्त थे?

......

23.10 सारांश

सांविधानिक परिवर्तनों की आवश्यकता 1757 में ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा राजनीतिक सत्ता ग्रहण करने के बाद सामने आई। ब्रिटिश सरकार कंपनी के मामलों को अब बिना किसी निगरानी के नहीं छोड़ना चाहती थी। कंपनी का एकाधिकार खत्म करने के लिए सौदागरों और उत्पादकों का दबाव बढ़ने लगा। जनमत बंगाल सरकार में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरुद्ध था। मुक्त व्यापार एक लोकप्रिय मांग के सामने आया।

इसी के अनुरूप, 1773 के नियामक अधिनियम ने कंपनी के अधिकारों पर कुछ रोक लगाई। इसका प्रशासन ब्रिटिश सरकार की निगरानी के अधीन आ गया। कलकत्ता में उच्च न्यायालय की स्थापना एक नए सरकारी तंत्र के निर्माण की दिशा में पहला कदम था।

पिट के भारत अधिनियम ने कंपनी के सापेक्ष सरकार के अधिकारों को और पुष्ट किया। भारत में प्राधिकार-केंद्र गवर्नर जनरल था, जो बोर्ड ऑफ कंट्रोल के माध्यम से ब्रिटिश सरकार के प्रति उत्तरदायी था।

1813 के चार्टर अधिनियम ने भारत के साथ व्यापार का कंपनी का एकाधिकार खत्म कर दिया। इसके साथ ही, 1600 से शुरू हुए एक युग का समापन हुआ। राजस्व, प्रशासन एवं नियुक्तियों पर कंपनी के नियंत्रण को यथावत रहने दिया गया। चीन के साथ व्यापार का उसका एकाधिकार बना रहा।

1833 के चार्टर अधिनियम ने चीन के साथ व्यापार का कंपनी का एकाधिकार समाप्त कर दिया। इस अधिनियम में यह घोषणा भी की गई थी कि भारतीय नागरिकों को आस्था, वंशमूल अथवा रंग पर आधारित किसी विभेद का सामना नहीं करना पड़ेगा।

1853 का चार्टर अधिनियम एक नियंत्रक कदम था। 1858 के भारत सरकार अधिनियम ने राज्य सचिव तथा वायसराय को प्राधिकार-केंद्र बनाया। वे ही दोहरे स्तंभ थे, जिनपर सरकारी ढांचा आधारित था। अंततः कंपनी शासन के स्थान पर ब्रिटिश साम्राज्य का शासन स्थापित हुआ।

23.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 23.2
2) उत्तर लिखने से पहले भाग 23.3 और 23.4 पढ़िए।

बोध प्रश्न 2

1) देखें भाग 23.7
2) देखें भाग 23.5

बोध प्रश्न 3

1) देखें भाग 23.9
2) देखें भाग 23.9